ॐ

भाषा पञ्च यज्ञ विधि

अर्थात्

हिन्दी भाषा में संसार भर के सनातनी नित्य कर्म
अपूर्व गीत-गोविन्द सहित

लेखक

तत्त्व वेत्ता डाक्टर रामचन्द्र मुनि

रचयिता

जगद् गुरु श्री तत्त्वोपनिषद् वा मूल दर्शन

संसार भर का एक मात्र कर्म योग धर्म शास्त्र.

सभी प्रकार के दुःखों का चिकित्सक

प्रकाशक

यशोदा देवी संचालक तत्त्व विज्ञान आश्रम
गजरौला जि० मुरादाबाद यू० पी०

मु:-जामियाँ प्रेस देहली

सन् १९३५ ई०   भेंट ।)

अथ

भूमिका

प्रिय बन्धु गण! मेरे इन सनातनी पञ्च यज्ञ नित्य कर्मों के वास्तविक भावार्थ इस देश की वर्तमान प्रचलित बोली हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी भाषाओं में लिखने के ये कारण हैं कि आदि सृष्टि की रचना के समय जो उस विश्वकर्मा जगत् रचयिता ने सब मनुष्यों के लौकिक व पारलौकिक सुखों के साधन बतलाने के लिये जिन सनातन धर्म शास्त्रों की महर्षियों द्वारा रचना करी थी, तो वह भी उसी समय के मनुष्यों की साधारण बोली यानी भाषा में करी थी, कि जिस से तमाम जनता भली प्रकार समझ सके। बस उन्ही सनातन प्राकृतिक नियमों को वेद भगवान् और उनकी भाषा को वैदिक भाषा कहते हैं। उन्ही वेद भगवान में प्रत्येक व्यक्ति के आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक सुखों की प्राप्ति और इनके विकार के दुःखों से बचे रहने या उन दुःखों के दूर करते रहने के लिये अनेक मन्त्र अर्थात् विचार, नियम लिखे हैं। जिन में से सार रूप से दैनिक अभ्यास के लिये कुछ मुख्य मन्त्रों को अन्य महर्षियों ने पञ्चयज्ञ नित्य कर्मों में नियत कर के उन का नित्य प्रति पालन करना कराना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य कर्म इसलिये लिख दिया है, कि जिस से इन के द्वारा सभी सुख भोगते रहें। परन्तु जब २ मनुष्यों ने अपने मनों के प्रमाद और शरीर के आलस्य के कारण उस भाषा को बिगाड़ा, बस तब २ ही उन प्राकृतिक नियमों के वास्तविक भावार्थ ठीक न समझ पाने के कारण विपरीत कार्यवाही होने लगी और सुख की जगह दुःख भोगने लगे। तो उसी दयामय की कृपा से फिर उन वेदों का वास्तविक भावार्थ समझाने के लिये अन्य २ महर्षियों द्वारा उसी २ समय की प्रचलित भाषा में अन्य २ वेदोक्त सनातन धर्म शास्त्रों की रचना हुई। इसी बोली को संस्कृत

भाग कहते हैं। जिस से फिर सब जनता सुखों के यथावत् साधन करके स्वर्ग सुख भोगने लगती थी। तो ऐसे ही अब भी लग भग ६००० वर्ष पूर्व से ऐसा ही समय आगया था, और महाभारत युद्ध के पश्चात् से तो--जिसको लग भग ५३०० वर्ष हुये—ऐसा भ्रष्ट समय आगया है, कि परस्पर में जातीय संग्राम हो २ कर और वह संस्कृत भाषा बिगड़ कर, सब देशों की पृथक् २ भिन्न २ प्रकार की अनेक भाषायें बन गयी हैं। अतः उस वैदिक ज्ञान के यथावत् भावार्थ को ठीक २ न समझ पाने के कारण, किसी देश ने कुछ और किसी ने कुछ अपनी २ बुद्धि तथा ज्ञान के अनुसार कुछ तो वेदों से मिलते जुलते और कुछ विपरीत अपने २ पृथक् २ ही सुखों के साधन नियुक्त कर लिये हैं। और वे उसी २ देश के पृथक् २ धर्म शास्त्र कहलाने लगे हैं। और उन धर्म शास्त्रों की तरह इन वेदोक्त नित्य कर्मों की जगह भी वैसे ही एक दूसरे से कुछ पृथक् ही शैली के नित्य कर्म भी नियुक्त कर लिये गये हैं। तो जब यहाँ इस आर्यवर्त देश में भी मत मतान्तरों का घोर संग्राम रहा, तो यहाँ की रही सही संस्कृत भाषा भी बिगड़ कर प्रत्येक प्रान्त में भिन्न २ भाषायें हो गईं, जिनमें से इस संयुक्त प्रान्त में अधिकतर नागरी व उर्दू भाषा का ही रिवाज हो गया है। और धार्मिक व सामाजिक कार्यों में अहंकार, दम्भ, कपट, छल और स्वार्थ अधिक सम्मिलित हो गया है। जिससे जो मनुष्य अब उन वेद मन्त्रों को पढ़ भी लेते हैं, तो उनके वास्तविक भावार्थ को ठीक समझ ही नहीं सकते। और जब भावार्थ ही को ठीक नहीं समझ सकते, तो फिर केवल उनके पढ़ने ही से सुखों के ठीक २ साधन भी कहाँ से हो सकते हैं। और जब साधन ही ठीक न हों, तो फिर अच्छा फल यानी सुख भी क्या प्राप्त हो ? अतः अनेक मनुष्यों का तो उन मन्त्रों से विश्वास ही हट गया है। और इसी कारण वे इन पंच यज्ञों को अनावश्यक कार्य मानने

लगे हैं और नास्तिक हो गये हैं। और जो व्यक्ति आस्तिक भी शेष रह गये हैं, तो इस विषय में उन की पृथक् २ साधन विधि (पद्धति) हो जाने के कारण परस्पर में मजहबी राड़ रहने लगी है । अतः इनका करना भी एक प्रकार से दुखदायी ही हो गया है। क्योंकि इन पंचायती सुखों के साधन नित्य कर्मों का स्वभाव ही यह है, कि जब यह एक रूप से नहीं किये जाते, तो फल में भी सुख की जगह दुख ही दिया करते हैं। और यहाँ मत तो अनेक हो गये किन्तु यह कोई न बता सका, कि अब किस धर्म अर्थात् शरीयत से सब एक हो सकते हैं। अतः इन्हीं सब दूषित दशाओं को देखकर मैंने उसी दयामय विश्वकर्मा की प्रेरणा से उन वेदों के सुखों के वास्तविक भावार्थ को जगद् गुरु श्री तत्त्वोपनिषद् वा मूल दर्शन में और उन पंच यज्ञ नित्य कर्मों को इस पुस्तक में यहाँ की वर्तमान काल की रिवाजी भाषा हिन्दी उर्दू में और संसार भर के लिये अंग्रेजी में लिख दिया है। कि जिस से तमाम संसार की जनता उनके वास्तविक भावार्थ को जान कर और एक रूप से पालन करके परस्पर के मजहबी झगड़ों से बरी होकर एक हो जावे। और सब की इन से अविश्वासी दूर होकर वे इनका पालन भी करने लगें । जिससे फिर वही विश्वकर्मा परमात्मा प्रसन्न हो और संसार भर को यथावत् स्वर्ग सुख भोगने का अधिकारी कर दे। फिर कुछ समय अनुकूल आजाने पर जब उस वैदिक भाषा के पढ़ने पढ़ाने का रिवाज और उसके ठीक २ भावार्थ समझने की शक्ति हो जावे, तो फिर उसी वैदिक भाषा में इन को भी पढ़ने लगे।

सुनो भाई ! वास्तव में तो सनातन धर्मानुसार सम्पूर्ण धर्म के १६ स्थम्भ हैं, जिनका पूरा २ विधान जगद् गुरू श्री तत्त्वोपनिषद् वा मूल दर्शन के दूसरे काण्ड के ८ वें अध्याय में पढ़ें। परन्तु उनके साधन करने में अधिक समय लगता है

और कठिन तप साध्य भी हैं। किन्तु सुखों का असल तात्पर्य उन्हीं के साधन से सिद्ध भी होगा, अतः महर्पियों ने उन्हीं के साधनों में रुचि और आस्तिक भाव बढ़ाने के लिये ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथि यज्ञ ये ५ ऐसे धर्म उन्हीं के अंग और नियुक्त कर दिये हैं, कि जिन में समय कम लगता है और सुगम भी हैं। इन्हीं को पाँच यज्ञ, नित्य कम, अराकीन शरैयत और जीवात्माओं के संस्कार भी कहते हैं। अतः प्रत्येक बच्चे के ब्रह्मचर्य काल यानी ज्ञान बृद्धि के आरम्भिक समय से ही सब को आस्तिक भाव बनाने के लिये आयु भर इनका नित्य प्रति पालन करते कराते रहना कर्तव्य कर्म नियुक्त कर दिया है। और इन को तीन दिन तक लगातार न करने से भूल जाने के कारण कोई राढ़ी व स्वार्थी न हो जावे, अतः इनके न करने वालों को धर्म पतित शूद्र यानी पशु संज्ञा हो जाना भी लिख दिया है। अतः इनका इसी एक रूप से सब को पालन करने से इनका फल भी स्थम्भों के समान तीनों प्रकार के दुःखों की गौणिक चिकित्सा का है। यानी सब प्रकार के दुःखों के कारण मेंट कर सभी को सब प्रकार से स्वर्ग सुख भुगवाने का है। जिनका पूरा २ विधान उसी जगद् गुरू श्री तत्त्वोपनिपद् वा मूल दर्शन के दूसरे काण्ड के ६ वें अध्याय में पढ़ें।

रामचन्द्र मुनि फाल्गुन कृष्णा अमावस सं० १९८९ वि०

॥ इति भूमिका ॥

* ओ३म् *

* सोमाय नमः *

अथ

प्रथम अध्याय ब्रह्म यज्ञ धर्म का विवरण

इसके कारण, नाम, क्रिया और गुण

ब्रह्म यज्ञ अर्थात ब्रह्म की तृप्ति या उपासना वा भक्ति करना या खुदा की इबादत करना, इसी को सन्ध्या और अन्य भाषा में नमाज़ भी कहते हैं। जिसको ५ से ८ वर्ष तक की आयु यानी ज्ञान बृद्धि के आरम्भिक समय उपनयन संस्कार के बाद ही से मरण पर्यन्त करते कराते रहना प्रत्येक स्त्री पुरुष का मुख्य कर्तव्य है, कि इसको नित्य प्रति दिन की दोनों सन्धि काल में मल मूत्र से निवृत तथा जल आदि से शुद्ध होकर या स्नानकर आलस्य दूर करके एकान्त स्थान में अपने घर ही पर या किसी पंचायती स्थान मन्दिर, मसजिद, गिर्जा वा जंगल में अथवा दर्याव के तट पर, प्रातःकाल को सूर्योदय के १ घंटा पूर्व से सूर्योदय तक सूर्य की ओर पूर्व को मुख करके, और सायंकाल को सूर्यास्त ही के समय से १ घंटा पीछे तक सूर्य की ओर पश्चिम को मुख करके निम्न लिखित मन्त्रों को भावार्थ सहित या केवल उनके भावार्थ ही विचार कर इस प्रकार किया करें, कि मन को एकाग्र कर चुप चाप सिद्ध आसन से बैठ कर प्रथम सात प्राणायाम करके, फिर तत्त्वोपासना के मन्त्रों के भावार्थ विचारने के बाद, कम से कम दो घड़ी तक ब्रह्म सूत्रों के भावार्थ विचार कर ब्रह्म की उपासना केवल इस विचार को लेकर करा करें, कि इस संसार चक्र में हमारा मन लगाना व्यर्थ है और आप में मन लगाना ही हमारा परमार्थ है, अतः हे प्रभो ! कृपा करके आप हमारी इस इच्छा को पूरी करने के लिये हमारे मन को वश में

कराके समाधि सिद्धि से हमको इस जन्ममरणरूपी आवागमन के चक्र से निकाल कर मोक्षदान देदें। यह तीनों प्रकार के दुःखों की गौणिक चिकित्सा है। जिस के करने के लिये निम्न लिखित प्रमाण हैं॥

तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते। स ज्योतिष्या ज्योतिषो दर्शनात्सोऽस्याःकालः सा सन्ध्या तत् संध्या याः सन्ध्यात्वम्॥१॥ षड्विंश ब्रा० प्रपा० ४। खं० ५॥

जो प्रकाश और अन्धेरे का संयोग है वही सन्धि वा सन्ध्याकाल होता है। और उसमें जो ईश्वर की उपासना करके उससे जो अपना मन जोड़ने की ध्यानक्रिया करी जाती है, वही सन्ध्योपासन कहलाता है। अतः ब्रह्मके उपासक व्यक्ति नित्य दिन रात्रि के ऐसे सन्ध्याकाल में सन्ध्योपासन अवश्य किया करें॥१॥

उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलंभद्रमश्नुते॥२॥ तैत्तिरीय आ० २। प्रपा० २ अनु० २॥

जब सूर्य्योदय व अस्त के समय प्रकाश और अंधेरे की सन्धि होती है, उस समय ब्रह्मका उपासक ही प्रकाश स्वरूप आदित्य परमेश्वर की उपासना करता हुआ सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है। अतः सब मनुष्यों को उचित है, कि इन दोनों सन्धि काल में इस प्रकार ब्रह्म की उपासना किया करें, कि दो घड़ी रात्रि से लेकर सूर्योदय तक प्रातः सन्ध्योपासन, और सूर्य्यास्त से लेकर दो घड़ी रात्रि गये तक सायं संध्योपासन, अर्थात् सब जगत की उत्पत्ति करने वाले ब्रह्म की उपासना व गायत्री आदि मन्त्रों के भावार्थ विचार कर जप अवश्य किया करें॥ २॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद्बहिष्कार्य्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥३॥ मनु० अ० २। श्लो० १०३॥

जो मनुष्य नित्य प्रातः सायं इस उपर्युक्त रीत्यनुसार संध्योपासन नहीं करते, वे कोई उन्नति नहीं कर सकते, अतः उनको शूद्र के समान समझ कर द्विज कुल से पृथक् कर शूद्र कुल में रख देना चाहिये। और उन से सेवा का कार्य लिया करें और उनको विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत भी न दें। इस से सभी उत्तम सुख चाहने वाले पुरुषों को उचित है, कि सब काम छोड़ कर प्रथम नित्य प्रातः सायं सन्ध्योपासन अवश्य किया करें॥

ज़िन्दगी यानी सुख व मौत यानी दुःखके यथावत् साधनोंके दूसरे वाक्य

ज़िन्दगी इन्सां की है क्या मौत क्या,
सब धरम ग्रन्थों में ऐसा है लिखा।
ब्रह्म की भक्ति है यारो ज़िन्दगी,
माद्दे की है निशानी मौत की॥
विद्या जीवन और अविद्या है मरन,
सत्य जीवन और चोरी है मरन।
मौत स्वारथ और आलस्य है,
ज़िन्दगी परमार्थ और पुरुषार्थ है॥
सादगी जीवन व फ़ैशन मौत है,
नाच गाने ब्रह्मचर्य की घात है।
एकता जीवन है और फ़ूट मात,
ज़िन्दगी आज़ादी है बन्धन है मौत॥
वीरता है ज़िन्दगी बुज़दिली मौत है,
सत्सङ्ग है ज़िन्दगी कुसङ्गत मौत है।
ज़िन्दगी सन्तोष मृत्यु लोभ जान,
मौत हिंसा ज़िन्दगी रक्षा को मान॥
ज़िन्दगी कृतज्ञता है सज्जनों,
मौत है कृतघ्नता मुझ से सुनो।

जिन्दगी चाहो तो साधन मौत को,
छोड़ दो कहना मुनी का मानलो ॥

❀ प्रथम कर्तव्य वा विचार ❀

क्रिया

अतः उपर्युक्त ब्रह्मयज्ञ की व्याख्यानुसार प्रातःकाल में निद्रा से उठकर व मलमूत्र आदि से निवृत्त होकर, गृहकार्य आरम्भ करने से पूर्व, और सायंकाल में गृह कार्यों से छुटकारा लेकर और मलमूत्र से निवृत्त होकर, यदि शरीर में बहुत आलस्य हो तो स्नान कर, या कम आलस्य में केवल हाथ मुख और पगही जल से धोकर व नम्र शरीर पर एक चुल्लू जल छिड़क कर आलस्य दूर करें। यदि जल वा आलस्य न हो, तो ऐसा न करने में भी कोई हानि नहीं। और यदि वस्त्र धारण कर बैठें, तो कोई भी वस्त्र हों परन्तु दुर्गन्धरहित ढीले और गले के बन्धन ढीले वा खुले हों। और बैठने का आसन भी कुशा वा ऊन का डेढ़ २ हाथ वर्ग लम्बा चौड़ा व ४ अंगुल मोटा गुदगुदेदार नरम व गरम पर खूब झाड़ कर या रेतीली भूमि पर हो सिद्ध आसन से बैठें। या जिस रीति से एक घण्टा बिना कष्ट बैठ सकें बैठ कर और मन को सब सांसारिक कार्यों से हटाकर, निम्न लिखित मन्त्र भावार्थ सहित या केवल इसके भावार्थ ही का विचार करें॥

ओम् अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

हे हृत्पुण्डरीक देश में मिलने वाले घट २ बासी परमात्मा! यदि आपका यथार्थ ज्ञान और अचल भक्ति हमारे हृदय के भीतर है, तो हम बाहर से चाहे कैसे भी अपवित्र वा पवित्र क्यों न हों, हर अवस्था में भीतर और बाहर से शुद्ध ही हैं। अतः हम प्रार्थना करते हैं, कि आपका यथार्थ ज्ञान और अचल भक्ति

हमारे हृदय में अवश्य स्थित हो । अतः इस श्लोक का यह तात्पर्य कदापि नहीं है, कि केवल इस को पढ़कर जल छिड़क देने मात्र से किसी व्यक्ति अथवा पदार्थ की शुद्धि हो जाती है, जैसा कि प्रायः सनातन् धर्मी आजकल कर रहे हैं, और इतना विपरीत व दूषित भी नहीं है, कि जितनी आर्य समाजी इससे घृणा करते हैं। अतः दोनों ही को इस के वास्तविक भाव को समझ कर इसके साधनों से परम लाभ उठाना चाहिये । क्योंकि मनुस्मृति के अ० ५ के श्लोक १०६ में मनु भगवान ने भी यही कहा है, कि

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

अर्थात् शरीर की शुद्धि जल से, वचन की शुद्धि सदैव सत्य बोलने से, और मन वा अन्तःकरण की शुद्धि विद्या ज्ञान और तप से होती है । अतः यही मनकी शुद्धि परमेश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन और जीवात्मा का श्रेष्ठ संस्कार है। इस लिये शरीर की शुद्धि की अपेक्षा मन ही की शुद्धि अवश्य करनी चाहिये ॥

* दूसरा कर्तव्य वा विचार *

क्रिया

फिर निम्न लिखित मन्त्र या इसके भावार्थ हो का विचार कर एक २ तोला जल से ३ आचमन करें । यदि जल न हो तो आचमन न करने में भी कोई हानि नहीं, केवल विचार ही करें ॥

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ यजु० अ० ३६ । मं० १२ ॥

भावार्थ

हे नारायण ! आप स्वयं प्रकाशमान और सब जगत् के प्रकाशक, ज़र्रा २ में व्यापक, सब के रक्षक, आनन्ददाता व अनुपम हैं।

हम आप से प्रार्थना करते हैं, कि हमको इष्ट सुखों व आनन्द की प्राप्ति हो और चारों ओर से आनन्द ही के शब्द सुनाई दिया करें ॥

* तीसरा कर्तव्य वा विचार *

क्रिया

फिर यदि कुछ आलस्य हो, तो निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा जल से इन्द्रियों का स्पर्श करें । यदि आलस्य न हो, तो केवल मन्त्रों वा इनके भावार्थ ही का विचार करें ॥

ओम् वाक् वाक् । ओम् प्राणः प्राणः । ओम् चक्षुः चक्षुः । ओम् श्रोत्रम् श्रोत्रम् । ओम् नाभिः । ओम् हृदयम् । ओम् कण्ठः । ओम् शिरः । ओम् बाहुभ्याम् यशोबलम् । ओम् करतलकरपृष्ठे ॥ १ ॥

ओम् भूः पुनातु शिरसि । ओम् भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओम् स्वः पुनातु कण्ठे । ओम् महः पुनातु हृदये । ओम् जनः पुनातु नाभ्याम् । ओम् तपः पुनातु पादयोः । ओम् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि । ओम् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥ २ ॥

भावार्थ

हे परब्रह्म ! आपने जो इस जीवात्मा को इस शरीर सम्बन्धी भोग के लिये कर्मेन्द्रियाँ, व ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार व चित्त आदि दे रक्खे हैं, वे सब आपकी कृपा से सुरक्षित हैं और बलपूर्वक काम कर रहे हैं । हम आप से प्रार्थना करते हैं, कि आप की कृपा से ये सब इन्द्रियाँ जीवन पर्यन्त अपने अपने यथावत् कार्य बलपूर्वक करती रहें ॥

* चौथा कर्तव्य वा विचार *

क्रिया

फिर यदि शिर के बाल बड़े व बिखरे हों, तो उनको इकट्ठे

करके चोटी में गाँठ लगावें। और निम्नलिखित मन्त्र या इसके भावार्थ ही का विचार करें। इसी मन्त्र को सावित्री, गायत्री व गुरुमन्त्र कहते हैं॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। यजु० अ० ३६ मं० ३॥

भावार्थ

हे गणपते! आप इस ब्रह्माण्ड को रचने, धारण करने व पालन पोषण करने वाले हैं, अतः हमारे प्राणदाता, सुखकर्ता, दुःखहर्ता, विज्ञानमय, प्रकाशमान, सब के उपासना करने योग्य हैं। हम आपका बुद्धि से ध्यान करके प्रार्थना करते हैं, कि आप हमारी इस शिर में रहने वाली बुद्धि को तीव्र करके सदा शुभ कार्यों और अपनी भक्ति में प्रवृत्त करें, जिससे हमको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि प्राप्त हो॥

* पाँचवाँ कर्तव्य वा विचार *

क्रिया

फिर इस मन के प्रमाद को दूर करने और चित्तको एकाग्र कर ईश्वर भक्ति में लगाने के लिये निम्न लिखित सप्त व्याहृतियों से इस प्रकार ७ प्राणायाम करें, कि सिद्ध आसन से बैठकर और दोनों हाथों की अर्ध खुली हथेली ऊपर कर घुटनों पर रख कर खूब तन कर बैठें। फिर दोनों नेत्रों से नासिका के अग्रभाग पर वा दोनों भृकुटी के मध्य में दृष्टि जमाकर, एक २ व्याहृति का भावार्थ विचारते हुये धीरे २ लम्बे स्वाँस खींचकर फेफड़ों को वायु से खूब भरें। और उतनी देर बलपूर्वक रोकें, कि जितनी देर सुगमता से रोक सकें और उसी मन्त्र का भावार्थ वैसे ही विचारें। फिर वायु को बाहर छोड़ते हुये भी उसी मन्त्र का भावार्थ विचारें और इतनी देर स्वाँस न लें, कि जितनी देर सुगमता से न ले सकें

और मन्त्र का भावार्थ विचारें । यह एक प्राणायाम हुआ, इसी प्रकार प्रत्येक व्याहृति से पृथक् २ विचार कर ७ प्राणायाम करें। अथवा उपर्युक्त रीत्यनुसार ही बैठकर और दोनों हाथों की अर्ध खुली हथेलियों से दोनों कानों को खूब ढाँपकर इसी मन्त्र की एक२ व्याहृति को खूब जोर से चिल्ला कर एक २ स्वाँस में एक एक बार बोलें और अपने कानों में उसी का शब्द सुनें। यह भी एक प्राणायाम हुआ, इसी प्रकार ७ बार करें । इससे हृदय व स्वाँस की गति ठीक होकर मन एकाग्र व वश में हो जाता है और हृदय व फेफड़ों के सब रोग दूर होते हैं। और परमेश्वर को सर्व काल में सर्वत्र व्यापक यानी हाजिर नाजिर व सब के शुभाशुभ कर्मों का द्रष्टा यानी साक्षी और न्यायकारी जानकर सब मनुष्य पाप कर्म करने से बचे रहते हैं और शुभ कर्म करके सुख ही भोगा करते हैं।

प्राणायामके सप्त व्याहृति मन्त्र

ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः । ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यं। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र। तै० प्र० १० अनु २१ ।

भावार्थ

१—हे विराट ! इस तमाम सृष्टि के आदि कारण यानी रचने वाले आप ही हैं, अतः आप ही का नाम भूः है ॥

२—और हे ध्रुव ! इस ब्रह्माण्ड को रच कर इसको अपनी आकर्षण शक्ति से अपने नियम के अन्दर धारण करने वाले भी आप ही हैं, अतः आप ही का नाम भुवः है ॥

३—और हे विश्वम्भर ! इस ब्रह्माण्ड को धारण करके स्वयं व्यापक रूप से इसका पालन, पोषण, रक्षण करने वाले भी आप ही हैं, अतः आप ही का नाम स्वः है ॥

४—और हे शंकर महादेव ! इस तमाम सृष्टि के संहार और लय करने वाले भी आप ही हैं, इस लिये बड़े से बड़े और पूजने योग्य आप ही हैं । अतः आप ही का नाम महः है ॥

५—और हे स्वयम्भू ! इस तमाम सृष्टि की जननी, जनार्दन भगवान यानी जानने योग्य पदार्थ भी आप ही हैं, अतः आप ही का नाम जनः है ॥

६—और हे यमराज ! इस तमाम सृष्टि के जीवात्माओं को उन के शुभ कर्मों का उत्तम फल व पाप कर्मों का दण्ड देने वाले यानी तपाने वाले भी आप ही हैं, अतः आप ही का नाम तपः है ॥

७—और हे शेष ! चूँकि यह संसार नाशवान है, अतः असत्य है। और आप सदा एक रस रहने वाले नाशरहित हैं, अतः आप ही का नाम सत्यं है ॥

८—और हे सर्वव्यापक परब्रह्म ! आप हमारे आगे, पीछे, नीचे, ऊपर, भीतर, बाहर तमाम संसार मे आकाश के समान सर्वत्र व्यापक व बड़े है, और हमारे सब शुभाशुभ कर्मों के द्रष्टा है, अतः आप ही का नाम खं ब्रह्म है। आप की जय हो ! जय हो !! जय हो !!!

छठा कर्तव्य का विचार

क्रिया

फिर निम्नलिखित ३ मन्त्रों के भावार्थ को विचारें। इनके विचार से तमाम मनुष्यों को अपने किये हुये शुभाशुभ कर्मों का शुभाशुभ फल मिलना अनिवार्य प्रतीत होकर, वे पाप कर्मों के करने से बचे रहकर शुभ कर्मों ही में लगे रहा करते और सुख ही भोगा करते है। इसी लिये इन को अघमर्षण मन्त्र भी कहते हैं ॥

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥

सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ३॥ ऋ० अ० ८। अ० ८ व ४८॥

भावार्थ

हे विश्वकर्मा ! आपने महाप्रलय के बाद इस ब्रह्माण्ड को अपने यथार्थ ज्ञान और स्वयं शक्ति से ज्यों का त्यों पूर्व कल्प के समान रच कर अपने नियम के अन्दर धारण किया। और शरीरों को यथावत् उत्पत्ति, स्थिति व लय करते रहने के लिये प्रथम ५ महाभूतों और काल चक्र सूर्य भगवान् व चन्द्र पृथ्वी आदि वसुओं को, और इन में समुद्र नदी पर्वत आदि जल के केन्द्र व दिन रात्रि के चक्र रचे। फिर तमाम जीवात्माओं को जो महाप्रलयमें सुषुप्ति अवस्था में पड़े हुये थे, उनके शुभाशुभ कर्म फलानुसार उनको पाँचों योनियों के अनेक अच्छे बुरे शरीरों में जन्म दिया। और भविष्य में सब के शुभाशुभ कर्म फलानुसार उत्पत्ति, स्थिति व लय का चक्र चलाते रहने के लिये स्वयं सब में सर्वत्र निराकार रूप से व्यापक हुए। इस से पता चलता है, कि जीवात्माओं के शुभाशुभ कर्म फल मिलने का सिद्धान्त जब महा रात्रि में भी नष्ट नहीं हो पाया, तो हमारे इस जन्म वा इस रात्रि ही में बिना भोगे कैसे नष्ट हो सकता है। अर्थात शुभाशुभ कर्मों का फल भोगना अवश्य अनिवार्य है। परन्तु आपकी अनन्य भक्ति के द्वारा क्षणमात्र में मोक्ष मिल सकती है। अतः आप से प्रार्थी हूँ, कि मुझे इस संसार के कर्म फलरूपी आवागमन के चक्र से निकाल कर अपनी अनन्य भक्ति के द्वारा सायुज्य मुक्ति का दान दे दीजिये॥

॥ सातवां कर्तव्य वा विचार ॥

क्रिया

फिर निम्न लिखित ६ मन्त्रों के भावार्थ से परमात्मा के सब दिशाओं में व्यापक गौणिक रूपों को मन से परिक्रमा कर नमस्कार करें।

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्योनमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वय द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥

ओं दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिर श्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमो० आदि यथापूर्व ॥ २ ॥

ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिता निमिषवः। तेभ्यो नमो० आदि यथापूर्व ॥ ३ ॥

ओं उदीची दिग्सोमोधिपतिः स्वजोरक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमो० आदि यथापूर्व ॥ ४ ॥

ओं ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः तेभ्यो नमो० आदि यथापूर्व ॥ ५ ॥

ओं ऊर्ध्वादिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमो० आदि यथापूर्व॥ ६ ॥ अथर्व कां० ३ अ० ६। वर्ग २७ मं० १-२ ३-४-५ ६ ॥

भावार्थ

हे अनन्त गुण वाले परमात्मा ! आप ही इस ब्रह्माण्ड को रच कर इस के पालन पोषण रक्षण और लयके लिये अपने गौणिक तत्त्वों को भिन्न २ रूप से सब दिशाओं में व्यापक कर के उनके द्वारा हमारे पालन पोषण रक्षण का प्रबन्ध कर रहे हैं। जैसे पूर्व में सूर्य, दक्षिण में इन्द्र, पश्चिम में वरुण, उत्तर में सोम, पाताल में विष्णु, आकाश में बृहस्पति, ये सब आपके गौणिक तत्त्वों के रूपों के ही नाम हैं, इनके द्वारा आप हमारा पालन पोषण रक्षण करते और दुष्ट आत्माओं के प्रहार से

बचाते तथा धार्मिक व्यक्तियों के सदोपदेशों के द्वारा हमारे मन को दुरुस्त कराके दुष्ट विचारों की ओर से हटाते हैं। और उत्तम २ सतोगुणी भोग पदार्थों के द्वारा हमारा पालन पोषण करते हैं। अतः आपको और आपके इन सब गौणिक नामों को मेरा बारम्बार नमस्कार है ३। और आपसे प्रार्थना करता हूं, कि इस आत्मा से अन्य आत्माओं को व अन्य आत्माओं से इस आत्मा को अन्याय व अधर्म से कष्ट न पहुँचे, जिससे हम सब आपस में मिलकर यहाँ प्रेम पूर्वक विचरें ॥

॥ आठवां कर्तव्य वा विचार ॥

क्रिया

फिर निम्न लिखित ४ मन्त्रों के भावार्थ से परमात्मा की अनन्त दिव्य गुणों वाली विभूतियों का स्मरण कर उनको नमस्कार करें। और अपने सदैव बली व उत्तम जीवन की प्रार्थना करें। इन्हीं मन्त्रों को उपस्थान मन्त्र कहते हैं॥

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १ ॥ यजु० अ० ३५ मन्त्र॥१४॥

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥२॥ यजु० अ० ३३ मं० ३१ ॥

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ३ ॥ य० अ० ७ ॥ मं० ४२ ॥

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ४ ॥ य० अ० ३६। मं० २४

भावार्थ

हे अनुपम दीनानाथ महापुरुष! जो पाँचों महाभूतों से बने तमाम जड़ जगत् का आत्मा है, उसको सूर्य कहते हैं। और जो पाँचों महाभूतों व सूर्यादि सब लोकों तथा प्राण को बनाकर धारण व रक्षण करने वाला है, और सब जीवात्माओं व प्राण तथा सूर्य का राग द्वेष रहित प्रकाश करने वाला है, और विद्वान् ज्ञानी उन्नत विभूतियों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है, और सबके दुःखों को नाश करने के लिये परम बली है, उसकी प्रसन्नता के निमित्त हम उपासना करते हैं। वह परमेश्वर हमारे हृदय में सदा प्रकाशित रहे। अतः जो कुछ भी इस चराचरजगत् में दृष्टि-गोचर होता है यानी दिखाई व सुनाई देता है, वे सब आप ही की विभूतियों के रूप और नाम हैं। इसलिये उनमें से सब उन्नत विभूतियों को मेरा बारम्बार नमस्कार है ३। और आप से प्रार्थना करता हूँ, कि जब तक इस जीवात्मा का भोग इस शरीर सम्बन्धी इस संसार में हो, तब तक इसकी सब ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ मन बुद्धि अहंकार और चित्त आपके चरणारविन्द में अत्यन्त भक्ति पूर्वक प्रीति रखते व आपका गुणानुवाद गाते हुये और इस संसार में न्याय व धर्म पूर्वक विचरते हुये बल पूर्वक शुभ कार्य करते रहैं, जिससे किसी का आश्रय और दीन न होना पड़े॥

* नवां कर्तव्य वा विचार *

क्रिया

फिर निम्न लिखित मन्त्र के भावार्थ को विचार कर, अपने सब शुभ कार्यों को उस दयामय शिव शङ्कर भगवान् के प्रेमपूर्वक अर्पण कर दें। इसी को समर्पण कहते हैं॥

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयानेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः तत ईश्वरं नमस्कुर्यात्॥

भावार्थ

हे शिव शङ्कर दयानिधे ! जो कुछ भी इस जीवात्मा से इस शरीर सम्बन्धी इस संसार में शुभाशुभ कर्म बन रहे हैं, वे सब आपकी प्रेरणा व आपही की आधिदैविक शक्ति और आप ही के बनाये आधिभौतिक रूप से बन रहे हैं, अतः वे सब आप ही के अर्पण हैं। और आप से प्रार्थी हूँ, कि आपके दिये हुए भोगों को यह जीवात्मा निर्वासन रूप से भोगता हुआ और इस संसार में निर्लेप रूप से विचरता हुआ आपकी अनन्य भक्ति के द्वारा सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हो ॥

॥ दशवां कर्तव्य वा विचार ॥

क्रिया

जब उपर्युक्त सब विचारों से पितामह परमात्मा की उपासना व प्रार्थना कर चुकें, तो फिर निम्न लिखित मन्त्र के भावार्थ से उसी को नमस्कार कर ब्रह्मयज्ञ समाप्त करें। और विशेष समय लगाना हो, तो जगद् गुरु श्रीतत्त्वोपनिषद् वा मूलदर्शन के किसी अध्याय या प्रथम काण्ड के प्रथम से छठे अध्याय तक वा चतुर्थ काण्ड का पाठ किया करें। वा ब्रह्म के नामों का आगामी लिखा गीतगोविन्द अर्थात् ओम् नाम की महिमा का गान या गायत्री मन्त्र का मन में जप किया करें। वा उक्त उपनिषद् के दूसरे काण्ड के दसवें अध्याय में बतलाये किसी भी चेतन देवता वा अवतार का जीवनचरित्र वा उनके दिये उपदेशों का स्वाध्याय किया करें ॥

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च, नमः शङ्कराय च मयस्कराय च, नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! य० अ० १६ मं० ४१

भावार्थ

हे परम पिता परमात्मा ! आपके सब गौणिक कर्मिक और स्वभाविक नामों में से जो सर्वगुण निधान सर्वोत्तम ओ३म् नाम है और उसमें जो ३ अक्षर हैं, उसके व्याकरण से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन ही नाम होते हैं। अतः आपके सृष्टि के आदि कारण यानी रचने वाले ब्रह्मा रूप को, और इसके पालन पोषण रक्षण करने वाले विष्णुरूप को, तथा संहार व लय करने वाले महेश रूप को मेरा बारम्बार नमस्कार है ३। आपका जय हो ! जय हो ! जय हो !

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

॥ इति ब्रह्मयज्ञविधि सम्पूर्णः ॥

रामचन्द्र मुनि

फाल्गुन कृष्णा सप्तमी सम्वत १६८६ वि०

अथ

—॥ गीत—गोविन्द ॥—

अर्थात्

ओम् नाम की महिमा का गान

१ ओम् नाम भगवान् का, सर्वानन्द निधान।
सब नामों में श्रेष्ठ है, करते वेद बखान॥
२ ओम् खं ब्रह्म रूप जो, वह है केवल एक।
वेद विमुख अल्पज्ञ जन, पूजें ब्रह्म अनेक॥
३ इस के तीनों हरफ़ हैं, देते अर्थ अनेक।
हर प्रकार जो ब्रह्म को, दर्शावें सविवेक॥
४ याते सब ही लेख में, लावें प्रथम याहि।
और मन्त्रों के आदि में, करें उच्चारण ताहि॥
५ ओम् विष्णु ब्रह्मा श्री, रुद्र महेश गुरु नाम।
इन्द्र सोम ध्रुव वरुण अज, उसी ब्रह्म के नाम॥
६ ओम् वायु यम दयामय, गणपति शेष कुवेर।
शिव शङ्कर जो नित सुने, दीन जनन की टेर॥
७ ओम अनुपम अजन्मा, अभय अमर गुणधाम।
जिसके सुमिरन मात्र से, मिलता है सुखधाम॥
८ ओम् सूर्य्य गुरू चन्द्र हैं, अग्नि भूमि आकाश।
बुध शुक्र मङ्गल वही, जो तम करें विनाश॥
९ ओम वसु राहु ग्रह, नक्षत्र शनैश्चर केतु।
ये सब उस के नाम हैं, जग रक्षा के हेतु॥
१० ओम् प्राण नित्य आत्मा, दिव्य देवी और अन्न।
नारायण नर देव है, परम शक्ति सम्पन्न॥

११ ओम् वीर्य विद्युत कला, तेजस हरी विराट।
परमेश्वर अन्तर वही, जिसका अद्भुत ठाठ॥
२१ ओम् विधाता जगत् का, और विश्व का काल।
होम हवी होता वही, हिरण्य गर्भ विशाल॥
१३ ओम् स्वयंभू सरस्वती, सर्व व्यापक सर्वकाम।
जो भक्तों के हृदय में, करता है विश्राम॥
१४ ओम पिता माता सखा, सखो प्रेम का स्रोत।
सत्य ज्ञान भण्डार है, सदा जागती जोत॥
१५ ओम् आदि आचार्य है, जिसने वैदिक ज्ञान।
आदि सृष्टि में जगत को, विधिवत् किया प्रदान॥
१६ ओम् ब्रह्म ने पर अपर, निर्गुण सगुण स्वरूप।
आप बताया स्वयं ही, अपना रूप अनूप॥
१७ ओम् सच्चिदानन्द है, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त।
अविनाशी अखिलेश है, न्याय दया से युक्त॥
१८ ओम् अजरऔरअमरहै, इसका आदि न अन्त।
निराकार निर्लेप है, सर्वेश्वर भगवन्त॥
१९ ओम् जन्म लेता नहीं, सुनो भाइयो मति धीर।
वह व्यापक है विश्व में, उसका विश्व शरीर॥
२० ओम् सर्व आधार है, सर्व शक्ति भण्डार।
वह पवित्र निर्दोष है, उस में नहीं विकार॥
२१ ओम् सर्व सुख मूल है, नेता ज्ञान स्वरूप।
अन्तर्यामी तेज मय, अद्भुत अभय अनूप॥
२२ ओम् जगत्का रचयिता, सब का पालन हार।
उसकी महिमा अकथ है, और है शक्ति अपार॥
२३ ओम् आँखकी आँख है, और है कान का कान।
ओम् जीव का जीव है, और है प्राण का प्राण॥
२४ ओम् सूर्य का तेज है, और अग्नि का ताप।
वह सब का अनुरूप है, पर अरूप है आप॥

२५ ओम् ब्रह्म के तेज का, दीखे ओर न छोर।
तारा मण्डल इसी से, जगमगाय चहुँ ओर ॥
२६ ओम वेद का विषय है, गीता का शुभ गान।
उपनिषदों में इसी की, महिमा हुई बखान ॥
२७ ओम् मणी की चमक है, और पृथ्वी की घास।
सब फूलों की महक है, फल की मधुर मिठास ॥
२८ ओम् मधुर और अम्लपटु, कटू और तिक्त कसाय।
शब्द स्पर्श रसरूप गंध, हैं सब ओम् ही भाय ॥
२६ ओम कर्म बिन कर करे, बिना पाँव गतिवान।
सब को देखे चक्षु बिन, सुने सदा बिन कान ॥
३० ओम सत्य सकल्प है, भुवनों का कर्तार।
उसकी इच्छा मात्र से, प्रकट हुआ संसार ॥
३१ ओम शक्ति की शक्ति है, सर्व शक्ति सर्वेश।
कोई कर्म होता नहीं, बिन उसके आदेश ॥
३२ ओम बिना होता नहीं, योग ब्रह्म के साथ।
ऋद्धि सिद्धि नवनिद्धि हैं, सभी ओम के हाथ ॥
३३ ओम देश की जान है, और राष्ट्र का प्राण।
सुख की मूल स्वतन्त्रता, देते हैं भगवान ॥
३४ ओम घड़ी में कर सके, राजाओं को रङ्क।
कोन भूप जिस पर नहीं, है उस का आतङ्क ॥
३५ ओम् विराजे एकसा, जड़ चेतन के बीच।
उसके लिये कोई नहीं, यहाँ ऊँच और नीच ॥
३६ ओम पतित पावन उसे, कैसा छूत अछूत।
उसे कभी भाती नहीं, यह दूषित करतूत ॥
३७ ओम् निरन्तर रहेगा, दीन दुखी का मीत।
क्योंकि उसकी रहत है, पीड़ित जन को प्रीत ॥
३८ ओम प्रेम का भक्त है, प्रेमी पर अनुरक्त।
उसके दर्शन प्रेम से, पालेते हैं भक्त ॥

३९ ओम् अलग पाखण्डसे , रहे दम्भ से दूर ।
सरल हृदय को वह सदा , कहता है भरपूर ॥
४० ओम उपासक थे सभी , सृष्टि के अवतार ।
राम और घनश्याम से , जग के तारन हार ॥
४१ ओम् उपासक थे सभी , ऋषि मुनि साधु सन्त ।
पीर पैगम्बर औलिया , ज्ञानी विद्या वन्त ॥
४२ ओम उपासक थे सभी , भूमि पाल मति धीर ।
जग रक्षा के हेतु थे , योधा रण के वीर ॥
४३ ओम उपासक हैं सभी , जिनका उज्वल ज्ञान ।
धर्म रक्षक महिपाल आर , जायज रूप श्रीमान् ॥
४४ ओम ब्रह्म की व्याप्ति का , किस विधि करूं अलाप ।
जैसे अग्नि काठ में , त्यों जग मे प्रभु आप ॥
४५ ओम आप तो एक है , उस के रूप अनेक ।
यह रहस्य जानें वही , जिनका विमल विवेक ॥
४६ ओम व्याप्त है विश्वमें , रमा हुआ अभिराम ।
इसी लिये साधन बिना , करता है सब काम ॥
४७ ओम रहत चारों तरफ , अति समीप अति दूर ।
सब उस से भरपूर हैं , वह सब से भरपूर ॥
४८ ओम कभी मिलता नहीं , देवालय के पास ।
उसका रहता है सदा , मुनियों के घर बास ॥
४९ ओम ओम जपते रहो , तन मन की सुधि खोय ।
प्रेम करे जो ओम से , ओम उसी का होय ॥
५० ओम् दया का सिन्धु है , कर देगा उद्धार ।
रामचन्द्र अमर होजायगा , वेद वाक्य अनुसार ॥

॥ इति गीत-गोविन्द ॥

——०*०——

ओ३म्

-॥ महाभूतेभ्यो नमः ॥-

अथ

द्वितीय अध्याय देवयज्ञ कर्म का विवरण।

इसके कारण, नाम, क्रिया और गुण

यह देवयज्ञ अर्थात् श्री तत्त्वोपनिषद् वा मूल दर्शन के प्रथम काण्ड के सातवें अध्याय में बतलाये आकाश, वायु, अग्नि जल, पृथ्वी पाँचों देवताओं व आठवें अध्याय में बतलाये इनके अधिपति सूर्य भगवान् की तृप्ति, भक्ति या उपासना करना है। कोई इसी को हवन, होम अग्निहोत्र, धूनी, नज़र भेंट या कुर्बानी करना भी कहते हैं। अतः हमको अपनी ओर से अपने परम प्रिय उत्तम २ पौष्टिक सुगन्धित खाद्य पदार्थों को भौतिक अग्नि के सहारे भस्म करके उनके गुणों को वायु द्वारा पाँचों तत्त्वों में मिलाकर उन को और उनके अधिपति सूर्य भगवान् को प्रसन्न करना, अर्थात् बजाय अपने खाने के उनको अर्पण करना, यानी नज़र भेंट वा कुर्बानी देना और उनके गुणोंमें शुद्धि की वृद्धि करना तत्त्व उपासना या देवयज्ञ करना कहलाता है। इस कारण यह आधिदैविक दुखों की गौणिक चिकित्सा है। अतः इसका पालन करना प्रत्येक ब्रह्मचारी, गृहस्थ और तपस्वी अवस्था वालों का मुख्य कर्तव्य है। परन्तु शोक है, कि वर्तमान समय में जब ग़रीब प्रजा को रोटी ही कठिनता से मिलती है, तो धन के अभाव से यह यज्ञ कहाँ से करे। और धनाढ्य प्रजा यथार्थ ज्ञान के अभाव से शौक़ीनी के कार्यों में धन व्यर्थ उठाते रहने के कारण इस यज्ञ को नहीं कर सकती। और साधारण विद्वान् विज्ञान के अभाव से इस कार्य को ठीक पद्धति से नहीं करते, तो फिर इसके यथार्थ उत्तम फल का लाभ भी कहाँ से हो॥

पाठको ! वास्तव में इससे कुछ तत्त्व शुद्धि यानी घर के बन्द और घिरे हुए खराब दूषित वायु की बाहर निकल कर धूप में शुद्धि हो जाती है। और धूपका शुद्ध वायु खराब निकले हुए की जगह अन्दर आजाता है और वहाँ कुछ उत्तम पौष्टिक सुगन्धि भी फैल जाती है। जो फेफड़ों को अति लाभ दायक और आरोग्य रहने का कारण होती है, बस यही इसका बड़ा लाभ है। और इसी लिये प्रत्येक संस्कारों में इसको करना नियुक्त भी कर दिया है, कि जिस मकान में संस्कार करने वह स्त्री पुरुषों का समाज एकत्र होकर बैठेगा, सम्भव है वहाँ का वायु अशुद्ध हो। यानी किसी घातक छूतदार रोग का विष उसमें मौजूद हो, जिससे वह जन समाज रोगी न हो जावे। अतः वह बाहर निकाल दिया जावे और वहाँ बाहर का शुद्ध वायु आजावे और वह भी पुष्ट तथा सुगन्धित हो जावे। तो इस तात्पर्य के लिये यह परम उपयोगी और सस्ती विधि भी है। और जिस मकान में भीतरी ओर यह दैनिक होता रहता है, तो वहाँ का वायु मण्डल हर समय अति उत्तम शुद्ध व पुष्ट बना रहता है। जिससे वहाँ कोई घातक व छूतदार रोग यथा-राजयक्ष्मा, मसान, हैजा, प्लेग, मोतीझरा आदि नहीं हो पाते। परन्तु इसका खुले स्थान में और थोड़ा २ करना केवल व्यर्थ ही सा है, क्योंकि वहाँ का वायु मण्डल तो धूप के कारण शुद्ध ही होता है। इसी कारण इस यज्ञ का नाम देवयज्ञ ठीक ही रक्खा भी गया है और रजोगुणी कर्म है॥

और वेद मन्त्रों से स्वाहा बोल कर करना इसलिये नियुक्त कर दिया गया है, कि प्रायः मनुष्य उनके सहारे भेंट ईश्वर अर्पण करना समझ कर उस की प्रसन्नता के निमित्त इसको करते भी रहेंगे। जिससे वेद मन्त्र कण्ठ करते कराते रहने की प्रथा व अभ्यास बना रहेगा। और इन्हीं मन्त्रों में इस कर्म करने के गुण भी बतलाये गये हैं, जो बिना मन्त्र पढ़े पढ़ाये जाने भी तो नहीं जा सकते। अर्थात इस में कई कारण लिप्त हैं, जिससे

मन्त्र बोलना ही श्रेष्ठ है। वरना मन्त्रों से इसका कोई मुख्य सम्बन्ध तो है नहीं, इसको बिना मन्त्र बोले करने से भी वही लाभ होगा। क्योंकि न तो वे पदार्थ ब्रह्म के भोग विषयहैं, और ना ब्रह्म प्राप्ति के साधन हैं। वह तो सर्व पाप,जरा, मृत्यु, शोक, क्षुधा, पिपासा इन ६ विकारों से रहित है, अतः उसमें किसी गुण की न्यूनाधिकता व अशुद्धि ही नहीं होती। तो वह खावे भी क्यों, और क्या खावे। अतः वह इन पदार्थों के गुण ग्रहण ही नहीं करता और न उस तक इनकी पहुँच ही है। ब्रह्म तो केवल ज्ञानमय है और बुद्धि ही का विषय है, तो फिर किसी प्राणी की कुर्बानी देना तो केवल व्यर्थ और पापकर्म ही तो रहा ना। बस यही वेदों का तत्त्व है। जिस के करने के लिये उदाहरणार्थ दो मन्त्र निम्न लिखित हैं। और अधिक जानकारी के लिये श्रीतत्त्वोपनिषद् वा मूल दर्शन के दूसरे काण्ड के ९ वें १० वें अध्याय को पढ़ें॥

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्यदाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ १॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः साय सायं सौमनस्यदाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतहिमा ऋधेम ॥ २॥
अथर्व० काण्ड० १९ अनु० ७ मं० ३ व ४॥

भावार्थ

जिस प्रकार यह परमेश्वर व भौतिक अग्नि और हमारा घर प्रति दिन प्रातः और सायंकाल में अग्निहोत्र द्वारा उपासना होते हुये आरोग्य और आनन्द के देने वाले हैं, उसी प्रकार उत्तम से उत्तम भोग पदार्थों और धन के भी देने वाले हैं। अतः हे परमेश्वर! हम इस प्रकार भौतिक अग्नि को अग्निहोत्र द्वारा प्रज्वलित कर प्रार्थना करते हैं, कि आप मेरे गृह कार्य व राज्यादि के शुभ प्रबन्ध के लिये चित्त में प्रकाशित रहिये, जिस

से उपर्युक्त रीत्यनुसार हम सब संसार की पुष्टि करते हुये स्वयं भी पुष्ट हों ॥ १ ॥

हे परमेश्वर ! उपर्युक्त प्रकार से हम प्रातः सायं भौतिक अग्निहोत्र के द्वारा आपको प्रकाशित कर १०० वर्ष तक आपकी उपासना करते हुये सब संसार की पुष्टि करके अपनी पुष्टि करते रहें । और इस प्रकार करते हुए हमारी हानि कदापि न हो ।२।

❀ देवयज्ञ सम्बन्धी पदार्थ ❀

१–होम के पात्रों का विवरण

१—एक कुण्ड इस प्रकार का बनवालें जो ऊपर १६ वर्ग अंगुल चौड़ा और १६ अंगुल ही गहरा और उसके नीचे का तला चार वर्ग अंगुल चौड़ा हो ॥

२—एक चमसा (चमचा) ऐसा बनवालें, कि जिसकी डण्डी १६ अंगुल लम्बी और उसका अग्रभाग चाय के चमचे के समान लम्बा गहरा ६ मासा घृत भरने योग्य हो ॥

३—एक आचमनी आचमन करने का पात्र बनवालें ॥

४—एक कटोरी घृत रखने का पात्र बनवालें ॥

५—एक थाली सामग्री रखने का पात्र बनवालें ॥

६—एक लोटा जल रखने का पात्र बनवालें ॥

७—एक चिमटा अग्नि ठीक करने का यन्त्र बनवालें ॥

८—एक आसन दाब या ऊन का डेढ़हाथ वर्गलम्बा चौड़ा बनवालें ॥

९—एक अंगोछा एक गज़ लम्बा गाढ़े का हाथ पूछने को बनवालें ॥

१०-एक छबड़ी समिधा रखने का पात्र बनवालें ॥

सूचना—ऊपर लिखे पात्रों को धनाढ्य व ग़रीब व्यक्ति अपनी २ सामर्थ्य के अनुसार सोना, चाँदी, काँसी, ताँबा, लोहा, लकड़ी वा मिट्टी के यथायोग्य किसी भी वस्तुके नित्य कर्म के लिये छोटे और बड़े नैमित्तिक यज्ञों को इसी हिसाब से बड़े बनवालें ॥

* २-होम की सामग्रीका विवरण *

१—पीपल, बढ़, गूलड़, आम, ढाक, पलाश आदि किसी भी

बिना घुने काष्ठ की नित्य कर्म के लिये ८ अंगुल लम्बी व १ अंगुल मोटी-और बड़े नैमित्तिक यज्ञ के लिये कुण्ड के अनुसार बड़ी समिधा काट कर रख लें ॥

२—उत्तम घृत गरम करके छानकर शुद्ध करके एक पात्रमें रखलें ॥

३—(अ) सुगन्धित सामग्री में केसर, अगर, तगर, स्वेत चन्दन इलायची, जायफल, जावित्री, गूगल, छारछबीला, नागरमोथा व धूप आदि किसी भी परिमाण में लेकर कूट के मिलाकर एक पात्र में रख लें ॥

(ई) पौष्टिक पदार्थों में घृत, दूध व अन्नों में चावल, गेहूँ, उड़द, तिल, जौ और कन्द, मूल, फल आदि में से कोई भी लिया करें ॥

(ऊ) मिष्ट में गुड़, शकर, सहत, दाख, छुआरे आदि लें ॥

(ए) औषधियों में गिलोय, गुलाब के फूल, सोंफ आदि लें ॥

(ओ) बने भोज्य पदार्थों में भात, खीर, हलुवा, लड्डू आदि लें ॥

॥ सूचना ॥

इन सब सामग्रियों में से नित्य कर्म के लिये दैनिक प्रति गृहस्थ कम से कम परिमाण में सुगन्धित दो तोला, पौष्टिक में घृत ३ तोला, दूध १ तोला, मिष्ट दो तोला, औषध १ तोला, और कभी अन्नों में से दो तोला, कभी कन्द मूलादि में से दो तोला अवश्य लिया करें। और सकाम नैमित्तिक देवयज्ञ के लिये यथा कार्य व सामर्थ्य के इससे अधिक परिमाण में लिया करें। परन्तु केवल अन्न वा कन्दमूल आदि ही अधिक न लें, बल्कि सब ही पदार्थों की मात्रा इसी हिसाब से बढ़ावें। और भोज्य पदार्थों में घृत मिलाकर हवन के कार्य में लावें। और माँस के व खट्टे, नमकीन तथा चरपरे पदार्थों से होम कदापि न करें ॥

* ३-होम के समय, स्थान व विधिका विवरण *

सन्ध्योपासन करने के उपरान्त देवयज्ञ नित्य कर्म करने

का समय है । इस के लिये गृह के भीतरी ओर स्थान शुद्ध करके उस में उपर्युक्त सब सामग्री अर्थात आसन, कुण्ड, समिधा, जल भरा पात्र, थाली में सामग्री, कटोरी में घृत, चमचा, चिमटा, आचमनी, अंगोछा आदि शुद्ध करके रखलें । और ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना के निम्नलिखित मन्त्रों का गान करें ।

ओम् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ १ ॥

भावार्थ

हे सब जगत् के रचयिता, सम्पूर्ण ऐश्वर्य युक्त, शुद्धस्वरूप, सुखदाता महादेव, कृपा करके आप हमारे सभी दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर करके, हमको सभी कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थों का दान कीजिये ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

भावार्थ

जो स्वयं तो सर्व काल में प्रकाश स्वरूप और इस ब्रह्माण्ड के सब जगत् व सूर्य, चन्द्र आदि सब प्रकाशकों व द्यौलोक का प्रकाशक, रचयिता व धारण करने वाला एक ही चेतन स्वरूप स्वामी है, सो ऐसे सुख स्वरूप विश्वकर्मा परमात्मा महादेव की प्राप्ति को हम सब योगाभ्यास द्वारा अनन्य भक्ति किया करें ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

भावार्थ

जो परमात्मा सब प्रकार के शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक बल और आत्मज्ञान का दाता है, और जिसकी सभी विद्वान् लोग उपासना करते हैं, और उसकी सत्य न्याय आदि शिक्षा

को मानकर पालन करते हैं, जिस से उसकी कृपा से मोक्ष सुख यानी अमर पद मिल सकता है, और जिस को न मानकर पालन न करना ही उसकी भक्ति न करके मृत्यु यानी आवागमन के दुःखों का हेतु है. इसलिये ऐसे परमात्मा की प्राप्ति के लिये हम सब उसकी आज्ञा का पालन कर हार्दिक भक्ति करने में तत्पर रहें ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

भावार्थ

जो परमात्मा इस चराचर जगत और इन में भी मनुष्य व पशु आदि शरीरों का रचयिता व रक्षक एक ही राजा है, ऐसे विश्वकर्मा प्रजापति की प्रसन्नता के लिये हम सब अनेक विधि से भक्ति किया करें ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥५॥

भावार्थ

जो परमात्मा तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि और पृथिवी को रचकर अन्तरिक्ष में ठैराये हुए और निराङ्क भ्रमण कराता है। और दुःख रहित मोक्ष तक के सुखों को धारण करे हुए है, ऐसे सुख दाता परब्रह्म की प्राप्ति के लिये हम सब भिन्न २ रीति से भक्ति किया करें ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

भावार्थ

हे प्रजापते! आप ही इस जगत के इन, उन, सब जड़ चेतनों में सर्वोपरि और अद्वितीय हैं। हे प्रभो! जिस २ पदार्थ

की हम को कामना हो और आपसे माँगें, हमारी वही कामना सिद्ध होवें। जिस से हम सब लोग खूब धनवान व श्रीमान होवें॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ ७।

भावार्थ

हे भाइयो! वह परमात्मा सकल जगत का उत्पादक और सभी लोकों व उनके जीवात्माओं के नाम, स्थान व जन्मों को जानता है। और अपने सब आज्ञाकारी जनों को भाई के समान समझता और उनकी सब कामनाओं को पूरी करता है। और जिस को सब निवृत्ति मार्ग वाले समाधि सिद्ध मोक्षी आत्मा प्राप्त हो कर नित्यानन्द में रहते हैं, वही परमात्मा हम सब का गुरु, आचार्य व न्यायाधीश राजा है। अतः हम सब उसकी आज्ञा का पालन कर अनन्य भक्ति किया करें॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम॥ ८॥

भावार्थ

हे स्वयं प्रकाशमान व सब जगत् के प्रकाशक ज्ञानस्वरूप, सकल सुख दाता परमात्मा! चूँकि आप सकल गुण निधान व सम्पूर्ण विद्या युक्त हैं, अतः कृपा करके हम सब लोगों को विज्ञान और राज्य आदि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये आप्त ऋषियों के उपदेश द्वारा उत्तम शुभ कर्म कराइये और कुटिल पाप कर्म दूर कराइये। जिस से हम सब लोग आप की नम्रता पूर्वक प्रशंसा (स्तुति) करके सर्वदा आनन्द में रहें॥

फिर प्रातःकाल और सायङ्काल के निम्नलिखित मन्त्रों से पृथक् पृथक् एक २ मन्त्र बोल कर सामग्री की एक २ आहुति देते जावें। और यदि एक ही समय होम करें, तो सब मन्त्रों से एक

ही समय कर दें। और चमसे में जो घृत वा सामग्री आहुति से बचा करे, वह जल के पात्र में छोड़ दिया करें। और हवन समाप्ति पर इसको जल से उतार कर सब उपस्थित गण अपने शिर व मुख से मल लिया करें। और किसी सकाम नैमित्तिक बड़े देवयज्ञ के लिये उसी कार्य की पद्धति के लेखानुसार उसी कार्य वा संस्कार के मन्त्रों द्वारा हवन किया करें॥

देवयज्ञ क्रिया प्रारम्भः

प्रथम वेदी कुण्ड में समिधा रखकर उनमें आगी रखकर पंखे से प्रदीप्त करके फिर इस मन्त्र से ३ वा ५ आहुति घृत की दें॥

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम

(प्रातःकाल के अग्निहोत्र मंत्र)

सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा॥ १॥

भावार्थ

जो चाराचर जगत् का आत्मा प्रकाश स्वरूप और सूर्यादि प्रकाशक लोकों का भी प्रकाशक है, उसकी प्रसन्नता के लिये हम होम करते हैं॥

सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा॥ २॥

भावार्थ

जो सूर्य परमेश्वर हमको सब विद्याओं का देने वाला और हम से उनका प्रचार कराने वाला है, उसी की कृपा के लिये हम अग्निहोत्र करते हैं॥

ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा॥ ३॥

भावार्थ

जो आपता स्वयं प्रकाशमान और सब जगत् का प्रकाशक सूर्य अर्थात् सब संसार का ईश्वर है, उसकी प्रसन्नता के लिये हम हवन करते हैं॥

सजुर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्योवेतुस्वाहा४

भावार्थ

जो परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्यापक और वायु आदि पाँचों महाभूतों के साथ दिन में परिपूर्ण सब पर प्रीति करने वाला और सब के अङ्ग २ में व्यापक है, वह सूर्य परमेश्वर हम को ज्ञात हो, उसके निमित्त हम देवयज्ञ करते हैं ॥

(सायंकाल के हवन मंत्र)

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ १ ॥

भावार्थ

जो अग्नि परमेश्वर ज्योति स्वरूप है, उसकी आज्ञा से हम परोपकारार्थ हवन करते हैं। और उसका रचा हुआ जो भौतिक अग्नि है इसमें जो पदार्थ डालते हैं, वह इस लिये, कि उन द्रव पदार्थों के परमाणु होकर जल की वृष्टि और वायु की शुद्धि हो, जिससे संसार सुखी हो ॥

अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॥ २ ॥

भावार्थ

जो अग्नि परमेश्वर सब विद्याओं का देने वाला तथा भौतिक अग्नि आरोग्य और बुद्धि बढ़ाने वाला है, उस की प्राप्ति के लिये हम लोग होम करते हैं ॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ ३ ॥

भावार्थ

इस मन्त्र का भावार्थ ऊपर सं० १ में लिखा जा चुका है, इस समय इस को केवल मौन रूप से (मन में विचार कर) आहुति दें।

सजुर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा४

भावार्थ

जो परमेश्वर प्राणादि में व्यापक वायु आदि ५ महाभूतों के

साथ रात्रि में परिपूर्ण सब पर प्रीति करने वाला और सब के अङ्ग २ में व्यापक है, वह अग्नि परमेश्वर हमको प्राप्त हो। इस के निमित्त हम अग्निहोत्र करते हैं ॥

(दोनों काल में होम करने के ६ मंत्र)

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम १

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदम् वायवेऽपानाय इदन्न मम २

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा॥ इदं आदित्याय इदन्न मम ३

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानवायुभ्यः स्वाहा
इदम अग्निवाय्वादित्येभ्य इदन्न मम ॥ ४ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा ॥ ५ ॥

ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा ॥६॥

सूचना

इन सब मन्त्रों के भावार्थ गायत्री मंत्र के समान हैं, और गायत्री का भावार्थ ब्रह्मयज्ञ में लिखा जा चुका है, और कुछ पूर्ण आहुति के समान है, जो नीचे लिखा गया है। और जितनी सामग्री शेष रही हो या किसी की इच्छा अधिक होम करने की हो, तो केवल उपर्युक्त गुरु मन्त्र सं० ५ वा ६ से करना श्रेष्ठ है। और अन्त में खड़े होकर निम्न लिखित पूर्ण आहुति मन्त्र तीन बार बोल कर तीन आहुति केवल घृत की देवें ॥

पूर्ण आहुति मन्त्र

ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ॥

भावार्थ

जो प्राण परमेश्वर के प्रकाश को प्राप्त होके अर्थात् चैतन्य में चैतन्य लीन होके, या उसी शक्ति में शक्ति मिल कर जो नित्यानन्द मोक्ष रूप एक रस है उस ब्रह्म को प्राप्त होकर, हम तीनों लोकों में सदैव आनन्द से विचरें ॥

अन्तिम क्रिया

अन्त में खड़े होके हाथ जोड़कर सूर्य की ओर मुख तथा ध्यान करके "ओं विश्वम्भराय नमो नमः" कहकर नमस्कार करें। और निम्न लिखित प्रार्थना व शान्ति पाठ करके देवयज्ञ समाप्त करें ॥

विश्व भरण पोषण कर जोई, ताको नाम विश्वम्भर होई।
सो विष्णु रूप सूर्य भगवानहीं, रश्मो चक्र विधि करत सदाहीं ॥
सो ब्रह्म लोक उगमन योगहीं, अधम जोव जो सेवें न तेहीं।
याते सबहीं विदित कराई, रामचन्द्र मुनि वेदाज्ञाहीं ॥

और वा पूरण ब्रह्म सों, विनय करूँ कर जोड़।
तुम बिन और कोई नहीं, देखूँ जाको ओर ॥
तुम कृपा के सिन्धु हो, और दया भण्डार।
विषय विकार मिटाइयो, मेरी ओर निहार ॥
दीन बन्धु कहलात हो, रक्षा करियो मोर।
करूणा हस्त बढ़ाइयो, शरण पड़ा हूँ तोर ॥
अनन्य भक्ति बढ़ाय के, मुक्ति का वर देव।
रामचन्द्र कर्म फल छोड़के, अपनाना महादेव ॥

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शांतिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

फिर हवन से शेष रहे खाद्य पदार्थों का सब उपस्थित गणों को प्रसाद बाँटा करें। और यथा शक्ति गुरु व अन्य ब्राह्मणों को दक्षिणा दिया करें और भोजन भी जिमाया करें ॥

॥ इति देव यज्ञ विधि सम्पूर्णतः ॥

रामचन्द्र मुनि, फाल्गुन कृष्णा द्वादशी सं० १९८६ वि०

ओ३म्

* पितृभ्य नमः *

अथ

❀ तृतीय अध्याय पितृयज्ञ धर्मका विवरण ❀

इसके कारण, नाम, क्रिया और गुण

यह पितृयज्ञ अर्थात् अपने जीवित और निकट रहते पितर, देव, ऋषि अर्थात् माता, पिता, गुरू तथा ऐसे ही अन्य वृद्धों की अन्न, जल, वस्त्र आदिसे नित्यप्रति खूब श्रद्धापूर्वक सप्रेम सेवा करके तृप्ति करना और उनसे उनके अनुभव व ज्ञान सीखना, और यदि मर गये हों, तो नित्य उनके सत्य धर्मोपदेशोंका पूजनीय स्मरण करके उन पर चलते रहना, और अपने वर्णाश्रम व कुलकी मर्यादा को निर्दोष बनाये रखना, और प्रति वर्ष उनकी जन्मतिथिको उनके जीवन चरित्रोंका विशेष रूपसे सुनना सुनाना पितृयज्ञ, तर्पण, श्राद्ध क्रिया, मीलाद, फातहा वा नज़र व नियाज़ देना कहलाती है ॥

और महान् पितृयज्ञके लिये परमात्मा के विराट रूप अर्थात जिस परम पितामह ब्रह्माजी से हम सब शरीरधारियों की उत्पत्ति अमावस को हुई और उसी दिन उसने हम सब को हमारे परमार्थ के लिये महर्षियों द्वारा वेदों का ज्ञान सुनाया, और जो अब भी वैदिक ज्ञान तथा सृष्टि क्रम द्वारा जीवित है और सदैव रहेगा। और कालचक्र के हिसाब से किसी समय फिर इसी तिथि को यह विराट रूप स्थूल रूप से सूक्ष्म रूप में जा स्थित होगा। तो उसकी उसी दिन उसी रीति से यादगारी स्थिति रखने के लिये मासिक २ कृष्णपक्षमें अमावसके दिन किसी ब्रह्मारूप ब्राह्मण, ऋषि, वानप्रस्थी वा सन्यासीको गुरुरूप से आदर सत्कारपूर्वक अर्थात् निमन्त्रण से अपने गृह पर बुलाकर अथवा उनके स्थान पर ही जाकर श्रद्धापूर्वक उनसे वेदविद्या सुनना और उत्तम २ सात्त्विक अन्न, जल, वस्त्र आदि पदार्थों से श्रद्धा पूर्वक उनको तृप्त करना महान

पितृ यज्ञ, मीलाद या फ़ातहा देना कहलाता है, और यह आधि-दैविक दुःखों की गौणिक चिकित्सा है। अतः इसका इसी प्रकार करना प्रत्येक ब्रह्मचारी व गृहस्थी का मुख्य कर्तव्य है। और वर्तमान मृतक श्राद्ध प्रथा के जानने के लिये श्रीतत्त्वोपनिषद् का मूलदर्शन के ६ वें अध्याय को पढ़ें। इसके प्रमाणार्थ कुछ वेद मन्त्र भी नीचे लिखे जाते हैं ॥

* अथ देवप्रमाणम् *

द्वयं वाऽइदं न तृतीयमस्ति। सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवा-नुपैति ॥ १ ॥ स वै सत्यमेव वदेत्। एतद्धि वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्मात्त यशो यशो ह भवति य एवं विद्वांत्सत्यं वदति। २ शत० कां १ अ० १ ब्रा० १ कं० ४-५ ॥ विद्वा ꣳ सो हि देवाः ॥ ३ ॥ शत० कां० ३ अ० ७ ब्रा० ६ कं १० ॥ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तुः विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ ४ ॥ य० अ० १९ मं० ३९ ॥

भावार्थ

सत्य और झूँठ दो लक्षणों के कारण मनुष्यजाति की देव और राक्षस दो संज्ञा होती हैं। अर्थात् सत्य बोलने सत्य मानने व सत्य ही कर्म करने वाले मनुष्य तो देव वा सुर जाति में, और ऐसे ही झूँठ बोलने झूँठ मानने व झूँठे ही कर्म करने वाले मनुष्य राक्षस वा असुर जाति में माने जाते हैं ॥ १ ॥ तो जब सत्य व्रत का आचरण करने वाले मनुष्य यशस्वी होने से देव, और इससे विपरीत कर्म करने वाले मनुष्य असुर होते हैं, तो इस कारण यही विद्वान् मनुष्य देव होते हैं ॥ २ ॥ अतः देव कहलाने के इच्छुक मनुष्य सब काल में सत्य ही कहैं मानैं और करैं ॥ ३ ॥ और हे परमेश्वर! ऐसे शुभाचरण करने वाले देव

जिनका चित्त आप में है और जो आपकी आज्ञा पालते हैं, वे श्रेष्ठ विद्वान् ज्ञानी पुरुष विद्यादान से मुझे भी पवित्र करें। आर आपकी कृपा से मैं व संसार के सब प्राणी मात्र पवित्र और सुखी हों ॥ ४ ॥

*** अथ ऋषिप्रमाणम् ***

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ १ ॥ य० अ० ३१ मं० ९ ॥ अथ यदेवानुब्रवीत। तेनर्षिभ्य ऋणं जायते तद्ध्येभ्य एतत्करो त्यृषीणां निधीगोप इति ह्यनूचानमाहुः ॥२॥ शत० कां० १ अ० ७ कं० ३ ॥ अथार्षेयं प्रवृणीते। ऋषिभ्यश्चैवैनमेतद्देवेभ्यश्च निवेदयत्ययं महावीर्यो यो यज्ञं प्रापदिति तस्मादार्षेयं प्रवृणीते ॥३॥ शत० कां० १ प्रपा ३ अ० ४ कं० ३ ॥

भावार्थ

सब विद्याओं को पढ़के जो दूसरों को पढ़ाना है वह ऋषि कर्म कहलाता है। आर उस पढ़ने व पढ़ाने तथा उन ऋषियों को उत्तम उत्तम पदार्थ देने से ऋषियों का ऋण निवृत्त होता है ॥ १ ॥ जो इन ऋषियों की सेवा करता है वह उनको सुख देने वाला होता है, और विद्या पढ़ाने वाला ऋषि कहलाता है। अतः यही व्यवहार विद्या कोश की रक्षा करने वाला होता है ॥ २ ॥ जो विद्या पढ़ के पढ़ाने के लिये विद्यार्थीको स्वीकार करना है, सो आर्षेय अर्थात ऋषियों का कर्म कहलाता है। तो जो इस कर्म को करते हैं वे ऋषि, और जो उन ऋषियों के लिये प्रसन्न करने वाले पदार्थों से सेवा करता है वह विद्वान् अति पराक्रमी होकर विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है। यानी जो विद्वान् और विद्या को ग्रहण करता है, उनका ऋषि नाम होता है। अतः सभी मनुष्य इस कार्य को करें ॥ ३ ॥

अथ पितृणां परिगणनम्

येषां पितृसंज्ञा ये सेवितुं योग्याश्च ते क्रमशो लिख्यन्ते । सोमसदः, अग्निष्वात्ताः, बर्हिषदः, सोमपाः, हविर्भुजः, आज्यपाः, सुकालिनः, यमराजाश्चेति ॥१॥ मातृपितामह-प्रपितामहाः। मातृपितामहीप्रपितामह्यः सगोत्राः सम्बन्धिनः ॥२॥ ये सत्यविज्ञानदानेन जनान् पान्ति रक्षन्ति ते पितरो विज्ञेयाः। अत्र प्रमाणानि—ये नः पूर्वे पितरः सोम्यास इत्यादीनि। यजुर्वेदस्यैकोनविंशतितमेऽध्याये सप्तसु सोमसदादिषु पितृषु द्रष्टव्यानि। तथा ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये। इत्यादीनि यमराजेषु। पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। इत्यादीनि पितृपितामहप्रपितामहादिषु एवं नमोवः पितरो रसायेत्यादीनि पितृणां सत्कारे च। इति ऋग्यजुरादिवचनानि संतीति बोध्यम्। अन्यच्च वसून् वदन्ति वै पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्। प्रपितामहांश्चादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी॥३॥ मनु अ० ३ श्लो० २८४॥ ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ ४ ॥ य० अ० २ मं० ३४ ॥

भावार्थ

जो व्यक्ति पितृगणना में सेवा के योग्य हैं उनको बतलाया जाता है, कि जो परा व अपरा विद्या मे निपुण और शान्त चित्त हैं वे सोमसद्, जो परमेश्वर और भौतिक अग्नि के उत्तम प्रकार से गुण ज्ञाता हैं वे अग्निष्वात्ता, जो परब्रह्म में स्थिर होके सत्य विद्यादि उत्तम गुणों में वर्तमान हैं वे बर्हिषद्, जो

सोम विद्या को जानते हैं वे सोमपा, जो अग्निहोत्र यज्ञ करके वायु और जल की शुद्धि करके सब जगत् का उपकार करते हैं वे हविर्भुज, जो घृतादि स्निग्ध पदार्थों और विज्ञान की दान द्वारा रक्षा करने वाले हैं वे आज्यपा, जो मनुष्य शरीर पाकर ईश्वर और सत्य विद्या के उपदेश देने ही में रत रहते हैं वे सुकालिन, और जो पक्षपात रहित सदा सत्य न्यायही करते हैं वे यमराज कहलाते हैं ॥१॥

जो स्त्री पुरुष उत्पन्न होकर अपने २ रज वीर्य की यथावत् ब्रह्मचर्य धर्म पालन से १८ व २४ वर्ष की आयु तक रक्षा कर उत्तम वेद विद्या को पढ़ कर, फिर श्री तत्त्वोपनिषद् वा मूल दर्शन के दूसरे काण्ड के १४ वें अध्यायानुसार विवाह संस्कार कर के ग्रहस्थी बन के सन्तान उत्पन्न करते हैं वा नहीं भी करते, तो ऐसी स्त्री माता व ऐसे पुरुष पिता वा वसु कहलाते हैं। और उनके माता पिता वा ४० वर्ष पर्यन्त वेदविद्यापाठी महर्षि जगत् को पुत्र समान विद्या सिखाने वाले प्रपितामह व आदित्य कहलाते हैं। और जो ऐसे माता पिता के सगोत्री वा सम्बन्धी अन्य स्त्री पुरुष भी होते हैं, तो वे भी सधर्मी होने के कारण उन्हींके समान माननीय होते हैं ॥ २ ॥

ये नः पूर्वे पितरः स सोम्यास इत्यादि, ये ऋग्यजुर्वेद आदि के बचन हैं। और मनु भगवान् ने भी कहा है, कि ऐसे पितरों को वसु, पितामहों को रुद्र और प्रपितामहों को आदित्य कहते हैं यह सनातन श्रुति है ॥ ३ ॥

पिता वा स्वामी अपने पुत्र पौत्र स्त्री वा नौकरों को सदैव के लिये आज्ञा दे के कहें, कि पिता पितामहादि, माता मातामहादि, तथा आचार्य और इनसे भिन्न भी जो विद्वान् लोग आयु अथवा ज्ञानसे वृद्ध मान्य करने योग्य हों, उन सबके आत्माओं को यथा योग्य सेवा से प्रसन्न किया करो। और सेवा करने के पदार्थ उत्तम जल, अनेक प्रकार के रस, घी, दूध, शुद्ध अन्न, वस्त्र व उत्तम २ प्रकार के फल हैं, इन सब पदार्थों से उनकी

सदैव सेवा करते रहो । जिस से उन का आत्मा प्रसन्न हो के तुम लोगों को आशीर्वाद देता रहे और उस से तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहो । और कहें कि तुम सब पितर हमारे अमृतरूप पदार्थों के भोगों से सदा सुखी रहो । और यदि उन पदार्थों की तुम्हारी इच्छा और हुआ करे कि जिन को हम कर सकें, तो आप लोग तुरन्त कह दिया करें और कोई कष्ट न उठावें । हम सदा मन वचन व कर्म से तुम्हारे सुख पहुँचाने में स्थित हैं । जैसे आपने बाल्यावस्था व ब्रह्मचर्यकाल में हम को सुख दिया है, वैसे ही हम को भी आपका प्रत्युपकार अवश्य करना चाहिये, जिस से हम पर कृतघ्नता का दोष लागू न हो ॥ ४ ॥

एतेषां विद्यमानानां सोमसदादीनां सुखार्थं प्रीत्या यत्सेवनं क्रियते तत्तर्पणम् श्रद्धया यत्सेवनं क्रियते तच्छ्राद्धम् ॥

अर्थात् जो उपर्युक्त सोमसदादि पितर विद्यमान यानी जीवित हों, उनको प्रीति से उपर्युक्त सेवनादि पदार्थों से तृप्त करना तर्पण, और श्रद्धा से अत्यन्त प्रीति पूर्वक सेवन कराना श्राद्ध या फ़ातहा देना कहलाता है । शेष कुछ नहीं ॥

॥ इति पितृयज्ञविधिः सम्पूर्णः ॥

रामचन्द्र मुनि फाल्गुन कृष्णा अमावस सम्वत १९८९ वि०

—o—

ओ३म्

* सर्वात्मभूतये नमः *

अथ

चतुर्थ अध्याय भूतयज्ञ धर्म का विवरण

इसके कारण, नाम, क्रिया और गुण

संसार में निशङ्क रूप से अपने सर्व सुख भोगने के लिये तमाम संसार के प्राणिमात्र से जगत्मय ब्रह्म और ब्रह्ममय जगत् जानकर प्रत्येक के साथ अहिंसा और अपरिग्रह धर्म पूर्वक प्रेम से न्यायोचित व्यवहार करना, अर्थात् बिना कारण उन से द्वेष न करना व उन से नाजायज़ आमदनी की इच्छा तक न करना, और उनके जायज दुःखों के दूर करने में अपनी शक्ति के अनुसार उनको अर्थदान देकर उनकी सहायता करना, या समष्टिरूप से ब्रह्मचारी और तपस्वियों के खान पान, रहन सहन के लिये सामान का प्रबन्ध करना कराना या उस के लिये धन दान देना, और काल पड़ने पर सब ज़रूरत मन्दों को अन्न वस्त्र व रोगियों को औषधियों तथा कुत्ते, बिल्ली, कौवे, चिड़ियें, चेंटो, चूहे व गाय आदि घर के सहारे रहने वाले सभी जीव जन्तुओं को कुछ अन्न का अर्थदान देकर उनकी सच्चे दान से तृप्ति यानी सहायता करना भूतयज्ञ, बलिवैश्वदेव कर्म, ज़कात वा फ़ातहा देना कहलाता है। और यह आधिभौतिक दुःखों की गौणिक चिकित्सा है। अतः इस का पालन करना हर ग्रहस्थी, राजा और गुरुकुल आश्रम का परम धर्म है। जिस के लिये निम्न लिखित प्रमाण हैं॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥ य० अ० १९ मं० ३९॥

भावार्थ

इस मन्त्रका भावार्थ पितृयज्ञ में वर्णन होचुका है, अतः वहीं देखलें॥

मन्त्र

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्। वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि॥ मनु॥ अ० ३ श्लो० ६२॥

भावार्थ

अर्थात कुत्ते आदि पशुओं व कङ्गालों, कुष्ठी आदि रोगियों तथा कौए आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिये अन्न आदि पदार्थ देकर उनको सदा प्रसन्न करना चाहिये॥

मन्त्र

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने। रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम॥ अथर्व कां० १९ अनु० ७ मं० ७॥

भावार्थ

हे अग्ने परमेश्वर! हम लोग आपकी आज्ञा से नित्यप्रति बलिवैश्वदेव कर्म अर्थात् भूतयज्ञ यानी जकात करते हुये घृत दुग्धादि पाष्टिक पदार्थों तथा धन धान्य व चक्रवर्ती राज्य तक की प्राप्ति कर नित्यानन्द में रहें। यानी माता, पिता, आचार्य आदि गुरुजनों तथा सब प्राणियों की उत्तम २ पदार्थों व निर्वैर शुभ कर्मों से नित्य प्रीतिपूर्वक सेवा करके आनन्द भोगते रहें। जैसे घोड़ा उत्तम घास दाना पानी मिलने से सन्तुष्ट होकर अच्छा काम देता है, तैसे ही सब प्राणियों को हम यथाशक्ति भोग पदार्थ देकर व उनके साथ निर्वैर प्रेमपूर्वक अहिंसा व अपरिग्रह रूपसे न्यायोचित व्यवहार कर सबको प्रसन्न कर सदा आनन्द में रहें॥

॥ इति भूतयज्ञविधि सम्पूर्णः॥

रामचन्द्र मुनि, फाल्गुन शुक्ला द्वितीया सं० १९८९ वि०

———o———

ओ३म्
* अतिथये नमः ॥
अथ

पञ्चम अध्याय अतिथियज्ञ धर्म का विवरण

इसके कारण, नाम, क्रिया और गुण

किसी भी ब्रह्मचारी, तपस्वी, संन्यासी वा सच्चे धर्म उपदेशक, देश भक्त, शर्मज्ञ, सर्वाङ्ग, मस्त वा मुनि अवस्था वालों या अपने किसी वृद्ध स्नेही अथवा राजा के अकस्मात् अपने गृह पर आये हुए की उत्तम शुद्ध सात्विक अन्न, जल, वस्त्रादि पदार्थों से श्रद्धापूर्वक सेवा करके उनकी तृप्ति करना और उन से उनके अनमोल सदुपदेश सुनना अतिथि यज्ञ वा महिमान नवाज़ी कहलाता है। और यह आधिदैविक दुःखों की गौणिक चिकित्सा है। अतः इसका पालन करना हर गृहस्थी व गुरुकुल आश्रम और राजा का मुख्य कर्तव्य है। जिसके लिये निम्नलिखित प्रमाण हैं ॥

ओं सानुगायेन्द्राय नमः। ओं सानुगाय यमाय नमः। ओं सानुगाय वरुणाय नमः। ओं सानुगाय सोमाय नमः। ओं मरुद्भ्यो नमः। ओं अद्भ्यो नमः। ओं वनस्पतिभ्यो नमः। ओं श्रियै नमः। ओं भद्रकाल्यै नमः। ओं ब्रह्मपतये नमः। ओं वास्तुपतये नमः। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। ओं नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। ओं सर्वात्मभूतये नमः। ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥ १ ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्। स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयात् व्रात्य। क्वावात्सी व्रात्य ! उदकम् व्रात्य ! तर्प्पयंतु व्रात्य यथा ते प्रियं तथाऽस्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य। यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ अथर्व० कां०१५। व०११ अ०२। म० १।२॥

भावार्थ

जो व्यक्ति सब ऐश्वर्य-युक्त हैं वे सानुग इन्द्र, जो सत्यन्याय कर्ता वे सानुग यम, जो ईश्वर भक्त हैं वे सानुग वरुण, जो

पुण्यात्मा पुरुष हैं वे सानुग सोम, जो प्राणों की रक्षा जानते हैं वे वैद्य मरुत, जो जलकी प्राप्ति की उत्तम क्रिया जानते हैं वे आपः, जो वनस्पति की उत्तम वृद्धि क्रिया जानते हैं वे वनस्पति, जो जायज रूपसे उत्तम धन कमा कर धनाढ्य हैं वे श्रीपति, जो विद्युत्कला के जानने वाले हैं वे भद्रकाली, जो वेदों के भावार्थको उत्तम रीति से जानते और उसका प्रचार करते हैं वे ब्रह्मपति, जो वास्तविक गृहकार्यों में कुशल हैं वे वास्तुपति, जो धर्म पूर्वक यथावत् विश्व कार्य चलाने वाले राजे हैं वे विश्वदेव, जो दिन व रात्रि में विचरने वाले पशु पक्षियों आदि से कार्य लेना जानते हैं वे दिवाचर व नक्तंचर, और जो सर्वांग रूप मस्त पुरुष हैं वे सर्वात्म भूति कहलाते हैं। अतः इन सबकी तथा माता पिता गुरू आदि सब गृहसम्बन्धियोंकी अकस्मात् गृह पर आजाने पर, उनको खूब श्रद्धा भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अन्न, जल, वस्त्रादिकसे सेवा करना और उनके सतूउपदेशसेअपना परम लाभ उठाना चाहिये१॥

जिसके घरमें ऊपर लिखे गुणयुक्त विद्वान अकस्मात् आवें, तब गृहस्थ सप्रेम उठकर उनको नमस्कार कर उत्तम आसन पर बैठावें। फिर जो कुछ उनकी इच्छा हो उसे पूँछे और उस इच्छा को यथाशक्ति पूरी करें। और उत्तम भोजन वस्त्रादि से सेवा करें। और सकुटुम्ब उनके सदुपदेश से अपना परम लाभ उठावें ॥२॥

॥ इति अतिथि यज्ञ विधि सम्पूर्ण ॥

पाठको! अब आप इन सब नित्य कर्मों को अवश्य ठीक २ समझ गये होंगे, और जिस तात्पर्य से ये धर्म में सम्मिलित किये गये थे और वह तात्पर्य किस प्रकार पूरा होसकता है, यह भी सब समझ ही गये होंगे। तो बस अन्त में इन यज्ञों के ठीक इसी प्रकार से करने कराने वाले व मजहबी झगड़े मेंटने वाले सज्जनों को मेरा सादर नमस्कार है ॥ ३ ॥ इति पञ्चयज्ञविधि सम्पूर्णः ॥

रामचन्द्रमुनि, फा० शु० द्वितीया सं० १९८९

श्री तत्त्व विज्ञान आश्रम गजरौला का जनता को

संदेश

है बेकारों को पैग़ाम॥ वेतन लेवें या इनाम

प्रियवर ! रामचन्द्र मुनि कृत जगद्गुरू श्री तत्वोपनिषद् वा मूल दर्शन ऐसी सरल नागरी व उर्दू भाषा में लिखा हुआ है, कि जिसको हर हिन्दुस्तानी भली प्रकार समझ सकता है। इस में अति आवश्यक ३२०० विषयों का इस प्रकार वर्णन है, कि ४ काण्ड के ४४ अध्यायों व १५०० विषयों में तो समस्त सृष्टि, स्थिति व प्रलय क्रम और मुक्ति सम्बन्धी धर्म विषय—और उत्तरार्ध द्वितीय काण्ड के २० अध्यायों व १७०० विषयों में समस्त तत्त्व विज्ञान चिकित्सा का ऐसा वर्णन है, कि जिनके पढ़ने से इस लोक व परलोक का कोई आवश्यक विषय जानना शेष ही नहीं रहता और प्रथम कोटि का पंडित तथा वैद्यराज बना देता है। अर्थात् अपने नियमों के साधकों को इस लोक तथा परलोक का संपूर्ण सुख और मुक्ति तक दिलाने वाला परा व अपरा विद्या का अनुपम सनातनी कर्म योग धर्म शास्त्र है। यानी एक तिनके से ब्रह्म पर्यन्त और यथार्थ कर्म काण्ड का ऐसा निर्भ्रम बोध करा देता है, कि जिस से परस्पर की सब प्रकार की मज़हबी व सामाजिक राढ़ें तथा रोग, कष्ट, ग़रीबी निर्बलता, अविद्या, धर्मों के अज्ञान व छूत छात के टन्टे दूर हो जाते और समस्त वास्तविक सुखों की प्राप्ति होती है। जिसको बहुत मतों के शिरोमणि विद्वानों ने मनन कर यथा नाम तथा गुण वाला संसार हितैषी धर्म ग्रन्थ माना और हृदय से अपनाया है। अतः सब जनता इस का मनन कर परम लाभ उठावे। और यदि कोई सज्जन यह ग्रन्थ लेने के ६ मास तक भी रचयिता के सामने आकर यह साबित करदें, कि यह ग्रन्थ मनुष्यों को समष्टि रूप से परम हितैषी नहीं हो सकता। और यह भी सिद्ध कर दें, कि ये विषय

इस प्रकार होने चाहियें, तो उनको यह आश्रम १००) रु० भेंट देगा। और यदि कोई स्त्री पुरुष इस ग्रन्थ में आश्रम को परीक्षा देकर तत्त्व विज्ञानिक आचार्य का प्रमाण पत्र प्राप्त कर देश सेवा करना चाहैं, तो उनको २०) २५) रु० मासिक वेतन भी दे सकेगा। प्रचारार्थ समस्त ग्रन्थ चिकित्सा शास्त्र सहित की भेंट ११) रु० धर्म शास्त्रकी ५) और केवल चिकित्सा शास्त्रकी ७) है। और डाक द्वारा मगाने पर १) रु० डाकव्यय आदि और भेंट मिलाकर प्रथम ही भेज देना चाहिये। क्योंकि वी० पी० भेजने का नियम नहीं है॥

है विद्वानों को पैग़ाम ❀ काटें इन्हें तो लें इनाम

और इस अपूर्व ग्रन्थ के अतिरिक्त श्रीमान् मुनि जी महाराज की रची निम्नलिखित तीन अन्य अनुपम पुस्तकें और एक ज्ञान विलास और हैं, जिनको इस आश्रम ने देश हितार्थ हिन्दी, उर्दू भाषा में छपाया है और अंग्रेजी में छपवाने का प्रबन्ध भी कर रहा है। इन सभी पुस्तकों को प्रायः सभी मजहबों के विख्यात सात्त्विक विद्वानों तथा समाचार पत्रों के सम्पादकों ने हृदय से अपनाया और अत्याधिक जगत हितैषि बतलाया है। अतः सब जनता इसको पढ़कर अपना परम लाभ उठावे॥ हाँ रचयिता के सन्मुख आकर इनके विपरीत साबित करने वाले को भी यह आश्रम १००) रु० भेंट दे सकेगा॥

(१) रामचन्द्र मुनि कृत "सत्युगी सुख भोगने की अपूर्व विधि" यह वर्तमान समय की अनुपम ही पुस्तक है, जोजात-पाँत तथा छूत छात के दोषों से पाक और यथा नाम तथा गुण वाली है। जिसके सार्व भौम्य गुण इसके पढ़ने से ही ज्ञात हो सकते हैं। यहाँ उनके विषय में अधिक लिखना लेखनी की शक्ति से बाहर है। प्रचारार्थ हिन्दी, उर्दू भाषा में इस की भेंट ॥=) और डाँक व्यय ।=) है॥

(२) रामचन्द्र मुनि कृत "भाषा पञ्च यज्ञ विधि" अर्थात् हिन्दी उर्दू भाषा में संसार भरके सनातनी नित्य कर्म। इसमें उत्तमता यह है, कि यह ईश्वर भक्ति, देव भक्ति, पितृ भक्ति देश

तथा राज्य भक्ति, व अतिथि भक्ति करने के आवश्यक कारण तथा उत्तम लाभ दायक उपासना विधि बतलाती है (२) इन सब के न करने या इसके विपरीत क्रिया द्वारा करने से दुःख भोगना साबित करती है (३) इन सब भक्तियों में व्यर्थ समय तथा धन गंवाने से बचाती है (४) इस विषय में सब मतों के अज्ञान व ग़लत फ़हमी को दूर करके आपस के मज़हबी झगड़ों को मिटाती है। (५) वेदान्त से भरा हुआ एक अनोखा गीत गोविन्द सिखाती है। प्रचारार्थ इसकी भेट ।) और डाँक व्यय ।=) है ॥

(३) रामचन्द्र मुनि कृत "बायोकेमिक विज्ञान चिकित्सा" यह वैसे तो छोटी सी पुस्तक है, किन्तु इसको रचयिता ने ऐसे विचित्र लाभकारी ढंग तथा अनुभव से लिखा है, कि अब तक की बायोकेमिक चिकित्सा सिद्धान्त सिखाने वाली कोई पुस्तक भी इसके महत्त्व की बराबरी नहीं कर सकती। और इसके पढ़ने से शीघ्र तथा सुगमता से उत्तम चिकित्सक बन जाता है। और उत्तम व सस्ती तथा बेख़तर चिकित्सा से संसार की ग़रीबी में सहायता दिलाती है। और १२ प्रकार के चिकित्सा सिद्धान्तों का जानकार बनाकर चिकित्सा सम्बन्धी शास्त्रार्थ का नाश कर देती है। प्रचारार्थ इसकी भेट हिन्दी उर्दू भाषा में १।) और डाँक व्यय ।=) है ॥

(४) "ज्ञान विलास" अर्थात् भिन्न २ प्रकार की कविता में कर्म, उपासना, ज्ञानकी गीता- इसके लेखक श्रीमान मुनि जी महाराज के पूज्य पिता जी स्वर्गीय श्री हरिशरण शर्मज्ञ जी ने वर्तमान समय के अश्लील व गन्दे तथा शृंगार रस प्रधान गानों की कुप्रथा को मेंटने के लिये, कि जिनसे हमारे नवयुवक बाल-बालिकाओं पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है, इसको रचा था। इसमें प्रत्येक तर्ज़ के रागों में उत्तम सुख दाता कर्म, उपासना और ज्ञान ही का उपदेश दिया है। जिसका एक २ पद वेदान्त से भरा हुआ है। जिसके गुण पढ़ने ही से ज्ञात हो सकते हैं। प्रचारार्थ इसकी भेंट ।−) और डाँक व्यय ।=) है ॥